धनार्जन की भारतीय अवधारणा

श्याम शंकर उपाध्याय
पूर्व जनपद एवं सत्र न्यायाधीश/
पूर्व विधिक परामर्शदाता मा0 राज्यपाल
उत्तर प्रदेश, राजभवन
लखनऊ।
मो0- 9453048988
ई-मेलः ssupadhyay28@gmail.com

व्यवस्थित मानव समाज के अस्तित्व में आने के पूर्व से ही मानव जीवन में धन–सम्पदा का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय चिन्तन परम्परा में 'अर्थ' को जीवन के चार पुरुषार्थों (पुरुषार्थचतुष्ट्य) में से एक माना गया है। जीवन की सार्थकता जीवन में अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के अतिरिक्त अर्थोपासना अथवा अर्थ–साधना से भी है जैसा कि मनीषियों के चिन्तन में आया भी है **''धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् यस्यैकोपि न विद्यते, अजागल–स्तनस्यैव जीवनम् तस्य निरर्थकम्''** अर्थात जिस व्यक्ति ने जीवन में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष में से एक को भी प्राप्त नहीं किया, उसका जीवन उसी प्रकार निरर्थक चला गया जैसे बकरी के गले में लटकता हुआ उसका थन । भर्तृहरि ने '**नीतिशतक्**' में धन की तीन गतियॉ दान, भोग और नाश होना बताया है । रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी धन की सार्थकता व उसकी निरर्थकता को निरूपित करते हुए कहा है ...**सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ।। नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहीं । संतमिलन सम सुख जग नाहीं ।।**

महाभारत के भीष्मपर्व में आये कथानक के अनुसार महाभारत के युद्ध में कौरव पक्ष से लड़ रहे भीष्म पितामह के सामने पड़ने पर श्री कृष्ण के आदेश पर जब धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने रथ से उतर कर भीष्म पितामह का अभिवादन किया तो अनीति व अधर्म के पक्ष में लड़ने के कारण लज्जित हुए भीष्म पितामह ने कहा '**अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्, इति सत्यं महाराज नः बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः**' अर्थात् पुरुष धन का दास होता है परन्तु धन स्वयं किसी का दास नहीं होता है, हे महाराज युधिष्ठिर ! यही सत्य है कि मैं कौरवों के धन से बंधा हुआ हूँ अर्थात् अर्थदास होने के कारण अनीति व अधर्म के पक्ष में लड़ने को विवश हूँ । लोक प्रशासन में बहुत से लोक अधिकारी भ्रष्टता नहीं करने की इच्छा रखते हुए भी अपने नियंत्रक लोक प्रशासकों के भय व दबाववश भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाते हैं और स्वयं भी भ्रष्टाचार जनित धन से समृद्ध होते रहते हैं । इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं नैतिकतावादी चिन्तक लार्ड ऐक्टन ने 1887 में कहा था : "Power tends to corrupt, and absolute power corrupts absolutely. Greatmen are almost always badmen" जिसका तात्पर्य है कि अधिकार व शक्ति सम्पन्नता से लोक सेवकों में भ्रष्टाचार का संक्रमण होता है और अतिशय शक्ति व सत्ता से अतिशय भ्रष्टता का संक्रमण होता है । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में प्रजातंत्र में बहुधा भ्रष्टाचार व पाखण्ड के फैलने का भय बना रहता है ।

धन के उपभोग में त्याग का निर्देश देते हुए **ईशावास्योपनिषद्** में कहा गया है **''तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्''** अर्थात् धन का उपभोग आसक्तिरहित होकर व त्याग पूर्वक करना चाहिये क्योंकि धन किसी का नहीं होता है । अपरिग्रह व गान्धीजी के आर्थिक चिन्तन 'ट्रस्टीशिप'

के सिद्धान्त का स्रोत वस्तुतः उक्त वेदमन्त्र ही है । भर्तृहरि ने धन को नाशवान् बताते हुए हुये कहा है ''**चला लक्ष्मीष्चलाः प्राणष्चलं जीवित–यौवनम् । चलाचले व संसारे धर्म एको हि निश्चलः (वैराग्य शतक)**'' अर्थात् लक्ष्मी चंचला हैं, प्राण भी चलायमान अथवा नश्वर है, जीवन एवं युवावस्था भी चलायमान अथवा नश्वर है, इस प्रकार इस अस्थिर अथवा चलायमान संसार में एक मात्र धर्म ही स्थिर व अटल है । धन, धर्म और सुख के बीच विद्वानों ने धन को ही वरीयता देते हुये धन को धर्म और सुख का स्रोत कहते हुए '**धनाद् धर्मः ततः सुखम्**' कहा है । तात्पर्य यह कि मनुष्य धन से ही अपने समस्त धर्मों अथवा कर्तव्यों का निर्वाह कर सकता है और धर्म अर्थात् कर्तव्य के निर्वाह से ही सुख प्राप्त हो सकता है । इस प्रकार सुख की उत्पत्ति सीधे धन से होना नहीं मानी गयी है अपितु धन और सुख के बीच धर्म अर्थात् नैतिक व मानवीय कर्तव्यों को सेतु माना गया है ।

जीवन को कुल चार भागों में बॉटते हुए मनीषियों का कथन है ''**प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितम् धनम्, तृतीये नार्जितम् ज्ञानम् चतुर्थे किं करिष्यसि**'' अर्थात् जीवन के प्रथम भाग में यदि विद्या अर्जित नहीं की, द्वितीय भाग में धन, तृतीय भाग में ज्ञान (अनुभव जनित ज्ञान) तो चतुर्थ अथवा अन्तिम भाग अर्थात् वृद्धावस्था में क्या करोगे ? धन अर्जित करने में और उसे सुरक्षित रखने में भी कितना कष्ट भोगना पड़ता है इसका वर्णन 'सुभाषितरत्नाभाण्डागार' में इस प्रकार किया गया है ''**अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानाम् च रक्षणे, आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः**'' अर्थात् धन कमाने में दुःख उठाना पड़ता है और इसकी रक्षा करने में भी दुःख उठाना पड़ता है, इस प्रकार धन की आय होने में दुःख और इसके व्यय होने में भी दुःख ही होता है इसलिए दुःख उठाकर धन कमाने वालों को धिक्कार है। ''**वरं हालाहलम् पीतं सद्यः प्राण–हरं विषम्, न तु दृष्टं धनान्धस्य भ्रूभंगकुटिलं मुखम्**'' अर्थात किसी धनवान् कुटिल व्यक्ति का मुख देखने अथवा उससे कुछ मांगने की अपेक्षा प्राणों को शीघ्र हर लेने वाले भयंकर विष को पी लेना कहीं अधिक श्रेयष्कर है । परन्तु धनहीन व दरिद्र व्यक्ति की निन्दा करते हुए कहा गया है ''**उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः, बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचाः इव**'' अर्थात् दरिद्र व्यक्ति के मन में उठने वाली इच्छाएं उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे बाल–विधवा हो चुकी स्त्री के स्तन । अतः स्पष्ट है कि जीवन में किसी इच्छा अथवा योजना की पूर्ति के लिए धन अपरिहार्य है।

धन के प्रति आकर्षण व लिप्षा को लेकर मानव समाज प्रारम्भ से ही दो भागों (Schools) में बंट गया था। एक स्कूलवालों का मत था कि ''**मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्, आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्चति स पण्डितः**'' अर्थात् ज्ञानी अथवा पण्डित वह है जो दूसरे की स्त्रियों को माता के समान, दूसरों के धन को मिट्टी के टुकड़े के समान तथा सभी जीवों को अपने समान मानता है । उपरोक्त सिद्धान्त के प्रतिपादित होने के तुरन्त बाद दूसरे स्कूलवालों ने उसके खण्डन में यह कहने में तनिक भी देर नहीं की कि ''**विषादपि अमृतम् ग्राह्यम्, विष्ठादपि च कांचनम्**'' अर्थात् यदि विष में भी अमृत पड़ा हो तो उसे निकाल लेना चाहिये और विष्ठा (गन्दगी) में भी सोना पड़ा हो तो उसे ले लेना चाहिए । कालप्रवाह व समाज के विकास के साथ दूसरे स्कूलवालों के उपरोक्त मत को सबल मान्यता मिलती गई। परिणामतः दूसरे स्कूल की विचारधारा के अनुयायियों का समाज में बाहुल्य हो गया और अपरिग्रह अथवा धन के प्रति आसक्तिहीनता का मत क्षीण व कमजोर होता गया जिसके फलस्वरूप जनमानस में अनुचित व भ्रष्ट उपायों से भी धनार्जन करने की प्रवृत्ति व्यापक रूप से बलवती हो गयी और इस प्रकार लोकजीवन व लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार विराट व भयावह रूप में व्याप्त हो गया ।

धन, सम्पत्ति एवं अधिकार के महत्व एवं उसके उपयोग के तरीके को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध कवि रहीम ने अपने मशहूर ग्रन्थ '**रहीम ग्रन्थावली**' में लिखा है : ''**प्राप्य चलान् अधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु, नापकृतम् नोपकृतम् न सत्कृतम् तर्हि तेन किं कृतम्**'' जिसका तात्पर्य है कि धन, सम्पत्ति एवं अधिकार से सम्पन्न होने पर जिस व्यक्ति ने अपने शत्रुओं को नुकसान नहीं पहुॅचाया, मित्रों एवं बन्धु–बान्धवों का भला नहीं किया और अन्य अच्छे कार्य नहीं किये तो फिर उस व्यक्ति ने

जीवन में क्या किया अर्थात् कुछ नहीं किया । महाभारत का आप्तवाक्य है कि **'आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि'** (आपातकालीन प्रयोजनों के लिए धन बचाकर रखना चाहिए और स्त्रियों के विश्वास को धन के द्वारा बनाये रखना चाहिये) । **'पंचतन्त्र'** में धन की महत्ता का वर्णन करते हुए आचार्य विष्णु शर्मा ने कहा है **''एकाकी पुरुषः श्रीमान धनं तथ्य परं सुहृद, धनमूलाः बान्धवाः सर्वे तस्माद् धनम रक्षयेद्''** अर्थात् मनुष्य अकेला ही हो परन्तु धनवान् हो तो अच्छा है क्योंकि धन ही मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है, बन्धु–बान्धव तो केवल धन के कारण ही सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए धन को हमेशा बचाकर रखना चाहिए ।

धन और सम्पत्ति से रहित तथा धन और सम्पत्ति से सम्पन्न व्यक्ति समाज और संसार में किस प्रकार से सम्माननीय अथवा असम्माननीय हो जाता है, इस पर किसी यथार्थवादी विद्वान का मत देखिए **''यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः, यस्यार्थाः स पुमान् लोके, यस्यार्थाः स च पण्डितः । तावद् गुणं गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम्, अर्थत्वे वर्त्तमानस्य न गुणाः न च गौरवम्''** जिसका अर्थ इस प्रकार है ''जिस व्यक्ति के पास धन व सम्पत्ति है, उसके सभी मित्र हो जाते हैं तथा बन्धु–बान्धव भी उसी के हो जाते हैं, वहीं श्रेष्ठ पुरुष समझा जाता है एवं वहीं ज्ञानी भी माना जाता है । व्यक्ति का गुण और गरिमा तभी तक है जब तक वह दूसरे से धन नहीं मॉगता, दूसरे से धन मॉगते ही वह न तो गुणवान रह जाता है और न ही गरिमावान ।

धन किस प्रकार सामान्य व्यक्ति के जीवन का अभीष्ट हो चुका है और धन ही की खोज में औसत मनुष्य किस प्रकार दिन–रात व्याकुल रहता है, इसे ब्यंग रूप में किसी विद्वान ने इस प्रकार निरूपित किया है **''टका धर्मो टका कर्मो टका हि परमंतपः, यस्य गेहे टका नास्ति, हा टका टकटकायते''** । धनी व्यक्ति गुण–ज्ञान आदि से रहित होते हुए भी समाज में किस प्रकार पूज्य हो जाता है, इसे भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' में इस प्रकार कहा है **''यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः, स एव वक्ता सच दर्शनीयः, सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयन्ति''** अर्थात जिस व्यक्ति के पास धन है वहीं (कुलीन नहीं होते हुए भी) कुलीन है, वही ज्ञानी, विद्वान व गुणवान् है, वहीं उत्तम भाषण करने वाला व दर्शनीय है क्योंकि सभी प्रकार के गुण तो सोने में ही पाये जाते हैं । अन्यायपूर्वक कमाये गये धन के सम्बन्ध में शास्त्रोक्ति है कि **'अन्यायेन उपार्जितम् द्रब्यम् दशवर्षाणि तिष्ठति, ब्यतीते तु दशे वर्षे समूलमेव बिनष्यति''** अर्थात् अन्यायपूर्वक कमाया हुआ धन केवल दस वर्ष तक रहता है और दस वर्ष बीत जाने के बाद समूल नष्ट हो जाता है ।

गरुड़ पुराण में कहा गया है : **''अदच्च–दानच्च भवेद्दरिद्री, दरिद्रभावेण करोति पापम् । पापस्यप्रभावेण नर्कम् प्रयाति, नर्कस्य प्रभावेण पुनश्चपापी, पुनर्दरिद्री पुनरेवपापी''** ।। जिसका अर्थ है कि दान नहीं देने वाला व्यक्ति दरिद्र हो जाता है, दरिद्र होने के कारण पाप कर्म करने लगता है, पाप के प्रभाव से नर्क में जाता है, नर्क के प्रभाव से पुनः पापी के रूप में जन्म लेता है और पापी होने के कारण पुनः दरिद्र हो जाता है तथा दरिद्र होने के कारण पुनः पाप कर्म करने लगता है । इस प्रकार दान नहीं देने वाला व्यक्ति अनन्तकाल तक बार–बार दरिद्र, बार–बार पापी, बार–बार नर्कगामी और बार–बार दरिद्र होकर पैदा होता रहता है । शास्त्रोक्ति है कि : **''दुःशीलो मातृदोषेण, पितृदोषेण मूर्खता, दारिद्रयम् आत्मदोषेण, कुलदोषेण कृपण्यता''** जिसका अर्थ है कि माता में दोष होने पर बच्चे में आचरण व चरित्र का दोष आता है, पिता में दोष होने पर बच्चा मूर्ख पैदा होता है, कुल में दोष होने पर व्यक्ति कन्जूस होता है परन्तु कोई व्यक्ति दरिद्र केवल स्वयं अपने दोष के कारण होता है ।

******